



DAILY NEWS BULLETIN

LEADING HEALTH, POPULATION AND FAMILY WELFARE STORIES OF THE DAY
Friday 20190913

शिशु से बातचीत

नवजात से एक वर्ष की उम्र से कीजिए बात, जल्द विकसित होगी भाषा की समझ (Amar Ujala: 20190913)

<https://www.amarujala.com/world/sheffield-university-research-talk-to-newborn-from-age-of-one-year>

खास बातें

एक वर्ष की उम्र से कीजिए बच्चों से बात, शेफील्ड विश्वविद्यालय का दावा

19 महीने के शिशु औसतन 100 शब्द समझ सकते हैं

शिशु अपनी देखभाल करने वालों से संवाद कायम करने का प्रयास करते हैं

शिशु से बातचीत करना अच्छा है, भले ही आपको लगे वे कुछ नहीं समझ रहे हैं

एक वर्ष की उम्र के शिशु से माता-पिता या देखभाल करने वालों को ज्यादा से ज्यादा आंखें मिलाने, इशारों और आवाज के जरिये संवाद कायम करने की कोशिश करनी चाहिए। ऐसा करने से दो वर्ष के होने तक शिशु भाषा की गहरी समझ विकसित करने के काबिल हो जाते हैं। यह दावा इंग्लैंड के शेफील्ड विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने नई रिपोर्ट में किया है।

इस रिपोर्ट में 11 व 12 महीने के शिशु और उनकी देखभाल करने वालों के बीच होने वाले संवाद का अध्ययन किया गया था। शोध के दौरान शिशु और उनकी देखभाल करने वालों के वीडियो बनाए गए,

जिनके आधार पर उनके व्यवहार का विश्लेषण किया गया। शोधकर्ता डॉ. एड डोनेल्लन के अनुसार शिशु द्वारा संवाद के लिए की जाने वाली गतिविधियों को भी बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

19 महीने का शिशु, 100 शब्दों की समझ

शोध में सामने आया कि 19 महीने के शिशु औसतन 100 शब्द समझ सकते हैं। वहीं जिन शिशु से नवजात अवस्था में ज्यादा संवाद कायम करने की कोशिशें की गईं, वे 130 शब्द तक समझ पा रहे थे।

पौष्टिक अनाज

बाजरा खाओ ऊर्जा बढ़ाओ, कैंसर और डायबिटीज सहित इन रोगों से लड़ने में है मददगार (Dainik Jagran: 20190913)

<https://www.jagran.com/news/national-benefits-of-millet-jagran-special-19572849.html>

बाजरा में भरपूर मात्रा में डायट्री फाइबर होते हैं जो पाचन में लाभकारी होते हैं और कोलेस्ट्रॉल का स्तर कम कर मोटापा घटाने में मददगार साबित होते हैं।

[अंकुर अग्निहोत्री]। गेहूं, मक्का और ज्वार की तरह बाजरा भी एक पौष्टिक अनाज है। सर्दी के दिनों में बाजरे की रोटी और खिचड़ी शरीर में अंदरूनी गर्माहट बनाए रखने के लिए बेहद फायदेमंद होती है। इसमें मौजूद विटामिन्स, मिनेरल्स, फाइबर और प्रोटीन शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम पेन्नीसेतुम ग्लौकम है। बाजरा एक ऐसी फसल है, जिसे सूखा प्रभावित क्षेत्रों या उच्च तापमान वाले क्षेत्रों में भी आसानी से उपजाया जा सकता है। भारत में बाजरे की खेती उत्तर प्रदेश, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और पंजाब आदि में होती है।

कैंसर और डायबिटीज के लिए रामबाण

कई अध्ययनों में कहा गया है कि बाजरा कैंसर से बचाव में सहायक है पर ये न केवल कैंसर से बचाव में सहायक है बल्कि इसके नियमित सेवन से डायबिटीज का खतरा भी कम हो जाता है। डायबिटीज के मरीजों को इसके नियमित सेवन की सलाह दी जाती है।

गर्भवती महिलाओं के लिए लाभकारी

गर्भवती महिलाओं को कैल्शियम और आयरन की जगह बाजरे की रोटी और खिचड़ी दी जाए तो इससे उनके बच्चों को जन्म से लेकर पांच साल की उम्र तक कैल्शियम और आयरन की कमी से होने वाले रोग नहीं होते।

रोगों को रखे दूर

बाजरा कैल्शियम से भरपूर होता है। जोड़ों की समस्या व ऑस्टियोपोरासिस में यह बेहद लाभकारी है। इसको खाने से हड्डियां मजबूत रहती हैं।

इसमें भरपूर मात्रा में डायट्री फाइबर होते हैं जो पाचन में लाभकारी होते हैं और कोलेस्ट्रॉल का स्तर कम कर मोटापा घटाने में मददगार साबित होते हैं।

बाजरा में ट्रायप्टोफेन अमीनो एसिड पाया जाता है, जो भूख को कम करता है। इसका सेवन सुबह के नाश्ते में करने से लंबे समय तक आपको भूख नहीं लगती और पेट भरा रहता है।

यह मैग्नीशियम और पोटैशियम का भी अच्छा स्रोत है, जो ब्लड प्रेशर को नियंत्रित रखने में मददगार है।

इसमें एंटीऑक्सीडेंट पाए जाते हैं, जो हमारे शरीर से फ्री रेडिकल्स के प्रभाव को नष्ट करने के साथ-साथ किडनी और लीवर से विषैले पदार्थों को बाहर निकालने में भी सहायक होते हैं।

पौष्टिक अनाज (Hindustan: 20190913)

http://epaper.livehindustan.com/imageview_249700_71589062_4_1_13-09-2019_13_i_1_sf.html



पोषण चाहते हैं तो इन गलतियों से बचें

अच्छा पोषण शरीर को कई रोगों से बचाता है। पर, हमारी अपनी ही छोटी-छोटी कई ऐसी आदतें हैं, जो अच्छे पोषण के साथ हमारी सेहत की दुश्मन बन जाती हैं। नतीजा यह होता है कि हम जो भोजन करते हैं, उसका पूरा लाभ शरीर को नहीं मिल पाता। जानें **दीपिका शर्मा** से

भोजन में शामिल पोषक तत्व और जीवन शैली हमारी सेहत पर बड़ा असर डालते हैं। मेरठ कॉलेज की असिस्टेंट प्रोफेसर (आहार व पोषण) कनिष्का सिंह कहती हैं, 'हम सेहत का तभी ध्यान रख सकते हैं, जब हमें सही जानकारी हो। देर तक भूखा रहने या गलत चीजें खाने से शरीर को सही पोषण नहीं मिल पाता और मेटाबॉलिज्म गड़बड़ाने लगता है। ऐसे खाद्य पदार्थ कम खाने चाहिए, जो खून में शर्करा की मात्रा बढ़ाते हैं। हाई कैलरी वाली पोषक चीजें खाएं। एक बार में ज्यादा न खाएं। ना ही खाने को बार-बार गर्म करें।'

सुबह का नाश्ता है जरूरी

कई लोग जल्दबाजी में सुबह का नाश्ता नहीं करते। वहीं डाइटिंग कर रहे लोगों को लगता है कि नाश्ता नहीं करने से वे ज्यादा कैलरी से बचे रहेंगे। पर यह गलती हमें मोटापे का शिकार बना देती है। शरीर का मेटाबॉलिज्म गड़बड़ जाता है और थकान रहने लगती है। सच यह है कि सुबह के नाश्ते से हमें दिन भर के लिए ऊर्जा मिलती है। सुबह नाश्ते में केवल ज्यादा कार्बोहाइड्रेट वाली चीजें न लें। हरी सब्जियों के साथ प्रोटीन वाली चीजें खाएं। इससे पेट देर तक भरा रहेगा व बार-बार भूख नहीं लगेगी।

दिमाग का भी रखें ध्यान

दिमाग का मुख्य काम सभी अंगों से मिलने वाले संदेशों को हासिल करना, उन्हें सही अंगों तक पहुंचाना और भावनाओं को कंट्रोल करना होता है। इन सभी कार्यों को ढंग से पूरा करने के लिए दिमाग को सही पोषण की जरूरत होती है। इसलिए

जरूरी बातें

- हरी सब्जियों को कम तेल मसालों में बनाएं। ज्यादा देर भूने या पकाने से बचें।
- नाश्ते में हमेशा ब्रेड, मक्खन और परांठे ही न खाएं। रोटी, सब्जी, दलिया, दही, अंकुरित अनाज आदि का सेवन भी करें। इससे शरीर को पर्याप्त पोषण मिलेगा।
- सब्जियों को उबालने के बाद उस पानी को भी इस्तेमाल में लाएं। उबालते समय सब्जियों के 5 से 55 प्रतिशत तक पौष्टिक तत्व पानी में घुल जाते हैं।
- अगर नाश्ता करने का समय नहीं है तो मुट्ठीभर अखरोट, बादाम और काजू जरूर खाएं। ताजे फल व सब्जियों का सेवन करें।

जरूरी पोषक तत्व

प्रोटीन: शरीर के ऊतकों को बनाने, उनके रख-रखाव व मरम्मत में प्रोटीन की जरूरत होती है। दूध, सोयाबीन, अंडा, दाल, दूध व मांस में प्रोटीन होता है।

कैल्शियम: हड्डियों और दांतों के अलावा मांसपेशियों और हृदय को ठीक रखता है। बढ़ते बच्चों के लिए जरूरी है। दूध, दही, पनीर, टोफू, पालक, ब्रोकली, में खूब सोयाबीन होता है।

फाइबर: पाचन तंत्र को ठीक रखना है तो फाइबर युक्त चीजें खाएं। इसके लिए सेब, नाशपाती, ओट्स, साबुत अनाज व सूखे मेवे खाएं।

आयरन: शरीर में खून बनाने और सब अंगों तक ऑक्सीजन पहुंचाने का काम आयरन का होता है। साबुत अनाज, बीस, मेवे, अनार, चुकंदर और हरी पत्तेदार सब्जियों में यह पर्याप्त होता है।

विटामिन ई, ओमेगा-3 फैटी एसिड, फ्लेवेनोएड्स व प्रोटीन आदि पोषक तत्वों से युक्त चीजें खाएं। जहां तक संभव हो ताजी बनी चीजें ही खाएं। भोजन को बार-बार गर्म करने या खूब ज्यादा देर तक पकाने से उनके पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं।

गलत मेल वाली चीजें खाने से बचें। मसलन, खाने के साथ फल नहीं खाएं। इससे भोजन को पचने में बहुत समय लगता है। इसी तरह गर्म चीजों के तुरंत बाद ठंडी चीजें खाने से भी अपच होने की आशंका बढ़ती है। आंतों में खाद्य पदार्थ देर तक सड़ते रहते हैं। इस वजह से गैस, पित्त की समस्या व जलन रहने लगती हैं। फलों में दही या नमक मिलाकर भी न खाएं। जो चीजें कच्ची खाई जा सकती हैं, उन्हें उसी रूप में खाएं। खाने से पहले फलों को सलाद के तौर पर खाना ज्यादा बेहतर होता है।

दुश्मन नहीं है वसा और कार्बोहाइड्रेट

कार्बोहाइड्रेट और वसा शरीर के दुश्मन नहीं हैं। शरीर को इन पोषक तत्वों की भी जरूरत होती है। जरूरत है तो केवल संतुलन बनाए रखने की। आहार में नियमित तौर पर डेयरी उत्पादों को शामिल करें। डेयरी उत्पादों से भरपूर मात्रा में विटामिन ए, डी, ई और कैल्शियम मिलता है। इसी तरह अनाज को हमेशा सब्जियों के साथ मिलाकर खाएं। फल, सब्जियां, साबुत दालें व साबुत अनाज को अपने भोजन में शामिल करें, इससे शरीर को पर्याप्त फाइबर मिलेगा। जहां तक संभव हो घर पर बना खाना ही खाएं।



कुपोषण

समुचित आहार से दूर होगी शिशुओं, बच्चों और किशोरों में कुपोषण की समस्या (Dainik Jagran: 20190913)

<https://www.jagran.com/lifestyle/health-proper-diet-can-solve-malnutrition-problem-in-child-and-adults-19570425.html>

कुपोषण की समस्या कई रोगों को बुलावा देती है। समुचित आहार देने से शिशुओं बच्चों और किशोरों में कुपोषण की समस्या को दूर किया जा सकता है।

मोदी सरकार - 2.0 के 100 दिन

बच्चे के सुपोषण का विशेष महत्व है। ऐसा इसलिए क्योंकि यही अवस्था कालांतर में व्यक्ति के स्वास्थ्य की बुनियाद बनती है। कुपोषण की समस्या कई रोगों को बुलावा देती है। समुचित आहार देने से शिशुओं, बच्चों और किशोरों में कुपोषण की समस्या को दूर किया जा सकता है।

वैसे तो सुपोषण का हर आयु वर्ग में अपना महत्व है, लेकिन मां के गर्भ में आने लेकर शिशु की पांचवीं वर्षगांठ (2000 दिन) तक शिशुओं को जो पोषण दिया जाता है, उसी से उनके जीवन भर के स्वास्थ्य की बुनियाद तैयार होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार शैशवावस्था शिशुओं के विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल है, जिसका दीर्घकालिक स्थायी प्रभाव कालांतर में व्यक्ति के स्वास्थ्य पर ताउम्र पड़ता है।

सेहत की बुनियाद

यूनिसेफ के अनुसार जिन शिशुओं का शुरुआती 1000 दिनों (जन्म के दो साल की उम्र तक) के दौरान अच्छी तरह सुपोषण किया जाता है तो इस स्थिति में ऐसे बच्चे बाल्यावस्था में जीवन को संकट में डालने वाली बीमारियों से 10 गुना ज्यादा बचे रहते हैं। खासकर उन बच्चों की तुलना में जिन्हें अच्छी तरह पोषण नहीं मिलता।

1. स्कूल में भी सुपोषित बच्चों का शैक्षिक प्रदर्शन कुपोषित बच्चों की तुलना में कहीं ज्यादा अच्छा रहता है।

2. वयस्क होने पर ऐसे बच्चे कुपोषित बच्चों की तुलना में स्वस्थ रहने के कारण 21 प्रतिशत से अधिक कमाई करने में सफल रहते हैं।

3. सुपोषित बच्चे वयस्क होने पर स्वस्थ परिवारों की बुनियाद रखने में सफल रहते हैं।

जीवनशैली से संबंधित रोगों से बचाव

अभी तक हेल्थ एक्सपर्ट्स सिर्फ यही बात कहा करते थे कि सिर्फ वयस्क होने पर अस्वास्थ्यकर या गलत जीवनशैली के कारण ही लोगों में गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं जैसे मोटापा, डायबिटीज, हृदय रोग, कैंसर और मानसिक स्वास्थ्य संबंधित परेशानियां पैदा होने का खतरा बढ़ जाता है। बहरहाल अब हेल्थ एक्सपर्ट्स इस बात को भी मानने लगे हैं कि गलत जीवनशैली से जुड़ी समस्याओं का बुनियादी कारण मां के गर्भ में रहने के दौरान और उसके बाद शैशवावस्था में पोषण से भी संबंधित हो सकता है।

असल में कुपोषण ऐसी समस्या है, जिसका दुष्चक्र एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जारी रह सकता है। जैसे कुपोषित लड़की कालांतर में वयस्क होकर कुपोषित महिला के रूप में कुपोषित शिशु को ही जन्म देगी।

शिशु के पोषण से संबंधित शुरुआती 2000 दिनों को तीन महत्वपूर्ण अवस्थाओं-गर्भावस्था, शैशवावस्था और शुरुआती बाल्यावस्था के रूप में शामिल किया जाता है।

ई-सिगरेट

ई-सिगरेट पर प्रतिबंध लगाने की तैयारी में ट्रंप, युवाओं के स्वास्थ्य पर हो रहा खतरनाक असर (Dainik Jagran: 20190913)

<https://www.jagran.com/world/america-trump-administration-seeks-ban-on-flavoured-e-cigarettes-to-combat-youth-addiction-19570675.html>

ई-सिगरेट से अब तक अमेरिका में छह लोगों की मौत हो चुकी है और 450 लोग फेफड़े की बीमारी से परेशान हैं।

मोदी सरकार - 2.0 के 100 दिन

वाशिंगटन, प्रेट्र। ई-सिगरेट (e-cigarettes) से जुड़ी मौतों और किशोरों के स्वास्थ्य पर इसके खतरनाक असर को देखते हुए अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप इस पर प्रतिबंध लगाने की तैयारी कर रहे हैं। ट्रंप ने बुधवार को कहा कि ई-सिगरेट की लत खासतौर पर बच्चों में नई समस्या बनकर उभरी है। ई-सिगरेट से अब तक अमेरिका में छह लोगों की मौत हो चुकी है और 450 लोग फेफड़े की बीमारी से परेशान हैं।

बच्चों और किशोरों में ई-सिगरेट की बढ़ती लत के मद्देनजर ट्रंप ने व्हाइट हाउस में स्वास्थ्य मंत्री एलेक्स अजार के साथ बैठक की। इस बैठक के बाद अजार ने कहा कि फूड एंड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन (एफडीए) तंबाकू फ्लेवर समेत सभी तरह की ई-सिगरेट पर पाबंदी लगाने का खाका तैयार करेगा।

अमेरिका में ई-सिगरेट में गो, क्रीम, मिंट, मेंथॉल, कैंडी, फ्रूट और एल्कोहल फ्लेवर में आसानी से उपलब्ध है, जिससे बच्चों को इसकी लत लग जा रही है। स्वास्थ्य पर ई-सिगरेट के खतरनाक प्रभाव को देखते हुए पीड़ित बच्चों के माता-पिता, शिक्षाविद और सिविल सोसायटी के लोग इसे प्रतिबंधित करने की मांग कर रहे हैं।

बता दें कि इस हफ्ते की शुरुआत में न्यूयॉर्क के गवर्नर एंड्रयू क्यूमो ने मिशिगन की तरह पूरे राज्य में फ्लेवर्ड ई-सिगरेट पर प्रतिबंध लगाने का प्रस्ताव रखा था। सैन फ्रांसिस्को ने एक कदम और आगे बढ़ते हुए सभी ई-सिगरेट की बिक्री पर प्रतिबंध लगा दिया।

स्वास्थ्य और मानव सेवा विभाग ने कहा कि प्रारंभिक आंकड़ों से पता चलता है कि पिछले 30 दिनों में अमेरिका के हाई स्कूल के एक चौथाई से अधिक छात्रों ने ई-सिगरेट का इस्तेमाल किया, जो पिछले साल की तुलना में 20.8% अधिक है।

Cardiovascular Disease (Hindustan: 20190913)

http://epaper.livehindustan.com/imageview_249700_71589372_4_1_13-09-2019_13_i_1_sf.html

कार्डियोवैस्कुलर डिजीज (सीवीडी)

युवाओं में बढ़ रहा खतरा

बड़ी संख्या में लोग हैं, जो सीवीडी यानी रक्तसंचारी तंत्र के रोगों और हृदय रोगों को एक मानते हैं, जबकि ऐसा नहीं है। आंकड़ों के अनुसार पिछले 25 वर्षों में सीवीडी के मामले 34 फीसदी तक बढ़े हैं। इस वजह से असमय मृत्यु और कम उम्र में शारीरिक अक्षमता का खतरा भी बढ़ा है। बता रही हैं **शमीम खान**



आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं की पहुंच लगातार बढ़ रही है। बावजूद इसके कई गंभीर रोगों के मामलों में लगातार वृद्धि हो रही है, इन्हीं में से है कार्डियोवैस्कुलर डिजीजेज (सीवीडी)। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार पूरे विश्व में यह मृत्यु का सबसे प्रमुख कारण है। पब्लिक हेल्थ फाउंडेशन ऑफ इंडिया द्वारा प्रस्तुत 2016 की रिपोर्ट के अनुसार पिछले 26 वर्षों में भारत में सीवीडी के मामलों में 34 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

युवा है सीवीडी

हमारा हृदय जटिल मांसपेशीय अंग है, जो शरीर के सभी भागों को खून पंप करता है। हृदय से एक मोटी नाड़ी निकलती है, जिसे एओर्टा कहते हैं, इसकी शाखाएं शरीर के विभिन्न भागों में रक्त और ऑक्सीजन पहुंचाती हैं। कार्डियोवैस्कुलर या सर्कुलरी सिस्टम (परिसंचरण तंत्र) हृदय, धमनियों, शिराओं और रक्त नलिकाओं से बना होता है। इनसे जुड़ी कोई भी समस्या सीवीडी कहलाती है। इस तरह सीवीडी, हृदय और रक्त नलिकाओं से जुड़े कई रोगों का समूह है, इसके कई रूप हैं, जैसे -

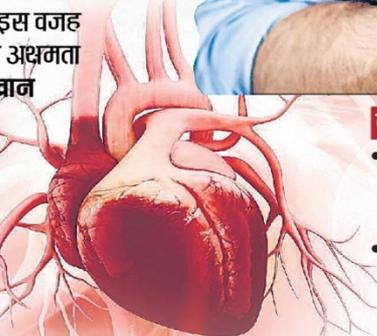
कोरोनरी हार्ट डिजीज : यह रक्त नलिकाओं का रोग है। ये नलिकाएं दिल की मांसपेशियों को खून की आपूर्ति करती हैं।
सेरोब्रोवैस्कुलर डिजीज : उन रक्त नलिकाओं का रोग है, जो मस्तिष्क को खून की पूर्ति करती हैं।
पेरिफेरल आर्टिरियल डिजीज : रक्त नलिकाओं का रोग, जो बाहों और पैरों को खून की पूर्ति करती हैं।
डीप वेन थ्रोम्बोसिस और पल्मोनरी एम्बोलिज्म : पैर की रक्त नलिकाओं में खून के थक्के जम जाना, जो हृदय और फेफड़ों तक पहुंच सकते हैं।

नजरअंदाज न करें इन संकेतों को

- छाती में बेचैनी और भारीपन महसूस होना।
- छाती में दर्द के साथ सांस फूलना।
- अत्यधिक पसीना आना।
- बाहों का सुन्न हो जाना।
- बोलने में जुबान लड़खड़ाना।
- हृदय की धड़कनें असामान्य हो जाना।
- लगातार चक्कर आना, चलने में समस्या होना।
- एक ओर बाहों या पैरों में कमजोरी आ जाना।
- लंबे समय से चली आ रही खांसी, जिसमें सफेद या गुलाबी कफ आता है, उस पर भी ध्यान दें।

कारण

- तनाव कार्डियोवैस्कुलर डिजीज की आशंका को 15-20 प्रतिशत बढ़ा देता है।



सीवीडी और हृदय रोग में है यह अंतर

सीवीडी में हृदय और परिसंचरण तंत्र से जुड़े सभी रोग सम्मिलित हैं, इसलिए इनका दायरा बहुत विस्तृत है। कार्डियो यानी हृदय और वैस्कुलर यानी रक्त धमनियां। सीवीडी में बीपी और स्ट्रोक भी शामिल हैं। हृदय रोग में वही बीमारियां आती हैं, जो सीधेतर पर हृदय और उसकी कार्यप्रणाली को प्रभावित करती हैं। अधिकतर हृदय रोग, सीवीडी का एक भाग हैं, लेकिन हृदय से जुड़ी कुछ समस्याएं, जो हृदय का आकार बढ़ने या मांसपेशियों में खराबी आने के कारण होती हैं, उन्हें सीवीडी में सम्मिलित नहीं किया जाता है। बच्चों में जन्मजात विकृतियां जैसे हृदय में छेद होना, दिल का बड़ा या छोटा होना भी सीवीडी नहीं है।

- कोलेस्ट्रॉल का बढ़ना और मोटापा हृदय तंत्र पर बुरा असर डालते हैं।
- धूम्रपान, धमनियों की दीवारों को हानि पहुंचाकर सीवीडी के खतरे को 3-6 गुना बढ़ा देता है।
- मांसाहार, तली चीजें, फास्ट फूड और ज्यादा नमक व चीनी खाना भी नुकसान पहुंचाता है।
- आनुवंशिक कारण। परिवार में इस बीमारी का इतिहास है तो सावधानी बरतना जरूरी है।
- शारीरिक सक्रियता की कमी का हृदय, धमनियों, और शिराओं पर बुरा असर पड़ता है।
- मधुमेह भी सीवीडी के खतरे को बढ़ाता है।

उपचार व दवाई

रोग का उपचार इस पर निर्भर करता है कि रोग कितना गंभीर है। हृदय व परिसंचरण तंत्र कितने क्षतिग्रस्त हुए हैं। कई बार सर्जरी भी की जाती है।
एंजियोप्लास्टी : प्राथमिक एंजियोप्लास्टी में रक्त नलिकाओं में जमे क्लॉट को निकालकर रक्त के प्रवाह को ठीक करते हैं। जरूरत होने पर एडवांस एंजियोप्लास्टी की जाती है, जिसमें धमनियों में रक्त के प्रवाह को सुधारने के लिए स्टेंट डाला जाता है।

युवा कहते हैं आंकड़े

- जर्नल ऑफ द अमेरिकन हार्ट एसोसिएशन के अनुसार विश्व के करीब 27 फीसदी वयस्क ब्लड प्रेशर की समस्या से ग्रस्त हैं।
- चीन के एक अध्ययन के अनुसार रोजाना 4-5 घंटे टीवी देखने वालों में हृदय रोगों की आशंका 27 फीसदी तक बढ़ जाती है।

- डब्ल्यूएचओ की 2016 में प्रकाशित, ग्लोबल बर्डन ऑफ डिजीज स्टडी के अनुसार, 15-49 की आयु वर्ग के 22 प्रतिशत लोगों की मृत्यु का कारण कार्डियोवैस्कुलर डिजीज है।
- अमेरिकन हार्ट एसोसिएशन के अनुसार गंभीर डिप्रेशन से पीड़ित लोगों में कोरोनरी आर्टरी डिजीज (सीएडी)

का खतरा 64 प्रतिशत तक बढ़ जाता है।
● डब्ल्यूएचओ के अनुसार, 2016 में सीवीडी रोगों से 1 करोड़ 79 लाख लोगों की मृत्यु हुई थी, जो कि कुल वैश्विक मृतियों का 31 प्रतिशत था। इसके कारण होने वाली कुल मृतियों में से 85 प्रतिशत हार्ट अटैक और स्ट्रोक के कारण हुई थीं।

ये उपाय करेंगे बचाव

- लाल मांस से परहेज करें। फल व सब्जियां अधिक खाएं।
- खाना पकाने के लिए सरसों, जैतून या मूंगफली का तेल इस्तेमाल में लाएं।
- तलने के बाद बचे तेल को बार-बार तलने के लिए इस्तेमाल न करें। इसमें ट्रांस फेट की मात्रा घातक स्तर तक बढ़ जाती है।
- हर रोज कम से कम 30 मिनट व्यायाम करें व टहलें।
- वजन न बढ़ने दें। अगर बढ़ गया है तो उसे कम करने का प्रयास करें।
- तनाव न लें। ध्यान करें या कोई हॉबी बना लें, जो तनावमुक्त

रखने में मदद कर सकती है।

- रक्तदाब को नियंत्रित रखें।
- नमक का सेवन कम करें।
- धूम्रपान और शराब का सेवन न करें।
- डायबिटीज है तो रक्त में शर्करा के स्तर को काबू रखें।
- परिवार में किसी को सीवीडी रही है, तो नियमित जांच कराएं।
- 20 के बाद ब्लड प्रेशर, ब्लड शुगर, कोलेस्ट्रॉल और वजन की नियमित जांच कराएं। 40 की उम्र पार कर चुके लोगों को स्ट्रेस टेस्ट भी कराने चाहिए।



बायपास सर्जरी : रक्त संचार को सुधारने के लिए बायपास सर्जरी भी की जाती है, जिसमें सर्जरी के द्वारा रक्त नलिकाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थापित किया जाता है।

एऑर्टिक वाल्व रिप्लेसमेंट : अगर हृदय का कोई वाल्व ठीक से काम नहीं कर रहा है तो इसे बदलने के लिये सर्जरी जरूरी है। इस वाल्व को निकालकर उसके स्थान पर कृत्रिम वाल्व लगा दिया जाता है।
हृदय प्रत्यारोपण (हार्ट ट्रांसप्लांट) : इसमें बीमार या क्षतिग्रस्त हृदय को निकालकर उसके स्थान पर स्वस्थ हृदय को लगा दिया जाता है। इस प्रक्रिया का उपयोग अंतिम उपचार के रूप में किया जाता है। इसमें उन लोगों का हृदय लिया जाता है, जिन्हें ब्रेन डेड घोषित कर दिया गया हो। इसे डोनर के शरीर से निकालने के बाद छह घंटे तक में प्रत्यारोपित करना जरूरी है। इस सर्जरी के सफल होने की संभावना 30 प्रतिशत होती है।

कार्डिएक पेसमेकर : हृदय की सामान्य धड़कनें प्रति मिनट 60-90 होती हैं। एरिथमिया से पीड़ित लोगों में धड़कनें आसामान्य रूप से कम होकर 30-40 हो जाती हैं। कई लोगों में 3-4 सेकेंड के

लिए धड़कनें रुक जाती हैं। रोगी चक्कर खाकर गिरने लगता है। ऐसे रोगियों के लिए कार्डिएक पेसमेकर वरदान है। आधुनिक लीडलेस पेसमेकर, पारंपरिक पेसमेकरों की तुलना में बहुत बेहतर हैं, इसकी सफलता दर लगभग 99 प्रतिशत होती है।
क्लॉट डिजॉल्विंग ड्रग्स : कुछ दवाओं से धमनियों को ब्लॉकज को खोलने का प्रयास किया जाता है। इन दवाओं को 4-5 घंटे के भीतर ही दिया जाना चाहिए, उसके पश्चात ये कारगर नहीं होती हैं।
स्टेंट रिट्रिवर : यह स्ट्रोक उपचार की नई तकनीक है, इसमें पतले कैथेटर और वायर के द्वारा मस्तिष्क से ब्लड क्लॉट निकाले जाते हैं तथा ब्लॉक हो चुकी रक्त नलिकाओं को खोला जाता है। नेशनल स्ट्रोक एसोसिएशन के अनुसार स्ट्रोक ठीक होने के बाद भी सावधानी रखें, क्योंकि दोबारा इसकी चपेट में आने का खतरा बहुत अधिक होता है।

हमारे विशेषज्ञ: डॉ. संजय कुमार, निदेशक, कार्डियोलॉजी, फोर्टिस एस्काटर्स हॉस्पिटल, फरीदाबाद। डॉ. सुब्रत अशोकी, एसोसिएट डायरेक्टर, कार्डियोलॉजी, एशियन हॉस्पिटल, फरीदाबाद।

दिल का इलाज करने वाली पेनिसिलिन का उत्पादन बंद

नई दिल्ली | स्कन्द विवेक धर

बच्चों को दिल की बीमारी देने वाले रोगाणु स्ट्रेप्टोकोकस को खत्म करने वाली एक मात्र दवा लांग एक्टिंग पेनिसिलिन का उत्पादन दवा कंपनियों ने बंद कर दिया है। इसके चलते ये दवा बाजार से गायब है और हजारों बच्चों की जिंदगियां खतरे में पड़ गई हैं।

विशेषज्ञों के मुताबिक, मूल्य नियंत्रण के चलते निर्धारित कीमत के अव्यहारिक होने के चलते यह हालात बने हैं। बहरहाल, मामले की गंभीरता को देखते हुए केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय हरकत में आ गया है। स्ट्रेप्टोकोकस रोगाणु पहले गले में जमता है और धीरे-धीरे हृदय तक पहुंच जाता है। समय पर इलाज न मिलने पर यह हृदय वॉल्व को क्षतिग्रस्त कर देता है। इसे रूमेटिक हार्ट डिजीज (आरएचडी) कहते हैं।

आईसीएमआर के एक अध्ययन के मुताबिक, देश में एक हजार लोगों में से दो से 11 लोग इस बीमारी से पीड़ित हैं। पेनिसिलिन के अलावा इलाज का दूसरा कोई विकल्प न होने के चलते डॉक्टर

स्वास्थ्य मंत्रालय थोक में खरीदेगा पेनिसिलिन

स्वास्थ्य मंत्रालय एक आला अधिकारी ने स्वीकार किया कि दवा कंपनियों ने पेनिसिलिन का उत्पादन रोक दिया है। कुछ दवा कंपनियों से पेनिसिलिन के उत्पादन के लिए बातचीत हो रही है। मंत्रालय एक साथ तीन साल की जरूरत का पेनिसिलिन खरीदकर सभी सरकारी अस्पतालों को उसकी आपूर्ति कर देगा। एक साथ मांग मिलने से निर्माता कंपनी को लाभ होगा व बाजार में पेनिसिलिन की उपलब्धता बढ़ेगी।

चाह कर भी मरीजों का इलाज नहीं कर पा रहे हैं। मंथली इंडेक्स ऑफ मेडिकल स्पेशियलिटी मेडिकल जर्नल के संपादक डॉक्टर सीएम गुलाटी ने बताया कि देश में ड्रग प्राइस कंट्रोल ऑर्डर लागू होते ही लांग एक्टिंग पेनिसिलिन को इसमें डाल दिया गया था। यह बताता है कि यह दवा कितनी जरूरी है। हालांकि, समय बीतने के साथ इसकी कीमत में बढ़ोतरी नहीं की गई। इस समय भी एक इंजेक्शन की कीमत करीब आठ रुपए तय की गई है।

Exercise (Hindustan: 20190913)

http://epaper.livehindustan.com/imageview_249709_71282682_4_1_13-09-2019_22_i_1_sf.html

व्यायाम से याददाशत बेहतर

लंदन। व्यायाम करने से दिमाग तेज होता है। जो लोग ज्यादा लंबी दूरी तक टहलते थे, उनके दिमाग के व्हाइट मैटर के ढांचों की संरचना बेहतर थी। उनकी नसों के बीच संबंध बेहतर था। फिट प्रतिभागियों ने याददाशत, कुशाग्रता के टेस्ट में बेहतर प्रदर्शन किया। यूनिवर्सिटी ऑफ मैन्चेस्टर के शोध में यह खुलासा किया गया। शोधकर्ताओं ने 1200 स्वस्थ युवाओं की फिटनेस और एमआरआई स्कैन की जांच की। इस दौरान पाया गया कि कसरत से रक्त प्रवाह बढ़ता है और दिमाग में ज्यादा ऑक्सीजन पहुंचती है।

बिना ऑक्सिजन वाला खून मिल रहा था 14 साल की बच्ची के हार्ट को सफदरजंग अस्पताल में हुई बच्ची की सफल सर्जरी

■ प्रस, नई दिल्ली : हार्ट की बीमारी से पीड़ित बच्ची की जन्म के तीन महीने के अंदर सर्जरी जरूरी थी, लेकिन बच्ची 14 साल तक बिना इलाज के जिंदा रही। इस उम्र में बच्ची की सर्जरी करना किसी चुनौती से कम नहीं था, लेकिन सफदरजंग अस्पताल के कार्डिएक सर्जन डॉक्टर अनुभव गुप्ता ने सफल सर्जरी कर बच्ची को नया जीवन दिया। सर्जरी के बाद बच्ची पूरी तरह से ठीक है और बाकी की जिंदगी वह आराम से जी सकती है।

डॉक्टर अनुभव गुप्ता के अनुसार, पटना की 14 साल की बच्ची जब यहां पहुंची और तो जांच में पता चला कि उसके हार्ट के अंदर की खून की नली में एक प्रकार की गड़बड़ी थी। नसें जहां जानी चाहिए थी, उसके उलट जाकर मिल गई थीं। इस वजह से हार्ट को बिना ऑक्सिजन वाला खून मिल रहा था, जिसकी वजह से बच्ची



का शरीर नीला पड़ गया था। गंदा खून की सप्लाई होने की वजह से शरीर बाहर से नीला दिखता है। लेकिन इस बीमारी के साथ-साथ बच्ची के हार्ट के दोनों चैंबर के बीच में एक छेद था, जिससे साफ और गंदा खून आपस में मिल रहे थे और शरीर को साफ और गंदा खून दोनों सप्लाई हो रहे थे। इसी वजह से बच्ची इतने दिनों तक जिंदा रह पाई। डॉक्टर ने बताया कि हार्ट के दाएं चैंबर में बिना ऑक्सिजन वाला गंदा खून होता है और बाएं चैंबर में

ऑक्सिजन वाला साफ खून होता है। दाएं चैंबर से पल्मनरी आर्टरी गंदा खून लेकर लंग्स तक जाता है और लंग्स में खून साफ होने के बाद खून पल्मनरी वेन के जरिए बाएं चैंबर में पहुंचता है। फिर यहां पर सबसे बड़ी खून की नली एरोटा हार्ट से साफ खून को शरीर के बाकी हिस्सों में सप्लाई करता है। यहीं पर इस बच्ची में डिफेक्ट था, उसकी खून की नली गलत जुड़ गई थी। डॉक्टर ने कहा कि सर्जरी मुश्किल और चुनौती पूर्ण थी। सर्जरी के दौरान हमने दोनों खून की नसों को ठीक किया और अपनी-अपनी जगह पर जोड़ा। फिर हार्ट के दोनों चैंबर के बीच के छेद को भी बंद कर दिया। अब उसकी बाँटी का रंग भी नॉर्मल हो गया है। डॉक्टर ने माना कि इस बीमारी में बच्ची का इतने दिनों तक जिंदा रह जाना ही अपने आप में रेयर है।

<http://epaper.navbharattimes.com/details/59526-72131157-1.html>

ज्यादा एंटीबायोटिक लेने से कुछ दिन बाद ये हमारे शरीर पर असर करना बंद कर देते हैं जब दवा ही बीमारी का कारण बन जाए



अनु जैन रोहतगी

यह बात थोड़ी अजीब लगती है पर सच है। दुनिया में बहुत सारे लोग सिर्फ इसलिए मर जाते हैं क्योंकि उनके शरीर पर एंटीबायोटिक दवाएं असर ही नहीं करती। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के अनुसार विश्व भर में सेप्टिसीमिया के कारण हर साल 7 लाख लोगों की मृत्यु होती है। जब कोई इन्फेक्शन पूरी बांडी में फैल जाए तो मेडिकली उसे सेप्टिसीमिया कहा जाता है। भारत की बात करें तो यहां हर साल अलग-अलग तरह के इन्फेक्शन से पीड़ित लगभग 58 हजार बच्चे सिर्फ इसलिए दम तोड़ देते हैं क्योंकि उनका इन्फेक्शन किसी भी एंटीबायोटिक से काबू में नहीं आ पाता। सवाल है कि आखिर शरीर में किसी भी बीमारी की वजह से फैला इन्फेक्शन तमाम तरह के एंटीबायोटिक से कम क्यों नहीं हो रहा?

■ बढ़ता हुआ इस्तेमाल

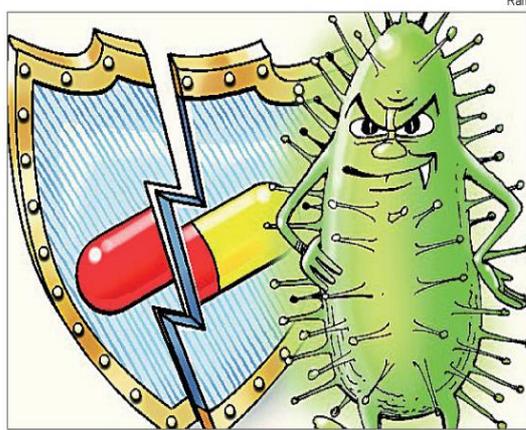
इसका कारण है एंटीबायोटिक का गलत और जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल, जिसे डॉक्टरों ने आम भाषा में 'मिसयूज ऑफ एंटीबायोटिक' का नाम दिया है। ज्यादा से ज्यादा एंटीबायोटिक खाने, उनका गलत इस्तेमाल करने से शरीर में उनके प्रति रेजिस्टेंस (किसी भी दवा का असर कम होना या विल्कुल न होना) पैदा हो रहा है। ब्रिटिश जर्नल ऑफ क्लिनिकल फार्माकोलॉजी की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत के बाजारों में एंटीबायोटिक्स का आसानी से मिलना यहां एंटीबायोटिक रेजिस्टेंस के बढ़ते मामलों की एक प्रमुख वजह है। एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व भर

में सबसे ज्यादा एंटीबायोटिक का सेवन हमारे देश में ही होता है और इसके बाद चीन का नंबर आता है। आजकल अपने यहां हालत यह है कि वायरल बुखार तक में लोगों को एंटीबायोटिक दे दिए जाते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि डॉक्टर अज्ञानता से ज्यादा दवा कंपनियों के दबाव में ऐसा करते हैं। एक रिपोर्ट के मुताबिक देश में 2000 से 2015 के बीच एंटीबायोटिक का इस्तेमाल 103 फीसदी बढ़ गया। प्रतिष्ठित मेडिकल मैगजीन 'लैसट' के अनुसार विश्व भर में वर्ष 2000 से 2015 तक एंटीबायोटिक के इस्तेमाल में 65 फीसदी इजाफा हुआ है, जो बहुत खतरनाक संकेत है।

लंदन की क्वीन मैरी और न्यूकासल यूनिवर्सिटी ने हाल ही में भारत में एंटीबायोटिक की बढ़ती विक्री को लेकर 2007 से 2012 तक का एक सर्वे पेश किया था। इसमें कई खतरनाक खुलासे सामने आए। पता चला कि देश में इन पांच सालों में एंटीबायोटिक की विक्री 26 फीसदी बढ़ गई। और भी ज्यादा चौंकाने वाली एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व भर

में सबसे ज्यादा एंटीबायोटिक्स का सेवन हमारे देश में ही किया जाता है और इसके बाद चीन का नंबर आता है

बात यह थी कि भारत में विकने वाली बहुत सी एंटीबायोटिक एफडीसी कैटेगरी (एक दवा में कई दवाओं का मिश्रण) की बनाई जाती है, जिनको बनाने के लिए सरकारी अथॉरिटी 'सेट्रल ड्रग स्टैंडर्ड कंट्रोल ऑर्गेनाइजेशन' से परमिशन तक नहीं ली जाती है। यानी देश में बहुत सी एंटीबायोटिक दवाएं अवैध रूप से



वन रही हैं। इस रिसर्च में यह भी पता चला कि एंटीबायोटिक रेजिस्टेंस को कम करने के लिए जिन एफडीसी फार्मूलों पर प्रतिबंध लग चुका है, कई मल्टीनेशनल कंपनियों हमारे देश में उन्हीं का धड़ल्ले से इस्तेमाल कर रही हैं। 'वर्ल्ड ड्रग्स रिपोर्ट' ने तो यहां तक कह दिया है कि भारत में अलग-अलग मिश्रित फार्मूले की ऐसी दवाएं भी धड़ल्ले से चल रही हैं जो विश्व भर में और कहीं चलन में नहीं हैं।

जानवरों पर भी एंटीबायोटिक का इस्तेमाल लगातार बढ़ रहा है। सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट ने यूपी, हरियाणा, पंजाब और राजस्थान में मौजूद 12 पॉल्ट्री फार्म हाउस की मिट्टी और जानवरों के नमूनों की जांच के बाद यह निष्कर्ष निकाला। जानवरों में एंटीबायोटिक का मिसयूज उनमें भी बहुत से बैक्टीरिया के लिए

रेजिस्टेंस पैदा कर रहा है। सबसे ज्यादा खतरा यह है कि जानवरों के जरिए दवाओं से बेअसर ये बेलगाम, खतरनाक, बैक्टीरिया वातावरण में पहुंच रहे हैं जो किसी न किसी रूप में इंसानों को भी अपना शिकार बना रहे हैं। डब्ल्यूएचओ के अनुसार जब बैक्टीरिया, वायरस, फंगस या पैरासाइट्स एंटीबायोटिक के ज्यादा इस्तेमाल होने पर अपना स्वरूप बदल लेते हैं और फिर उन पर कोई एंटीबायोटिक काम नहीं करती तो जन्म लेता है 'सुपर बग', जिस पर किसी दवा का असर नहीं होता।

सेंटर फॉर डिजीज कंट्रोल एंड प्रिवेंशन के अनुसार भारत में लगभग 50 फीसदी दवाएं बिना किसी जरूरत के दी जाती हैं। एंटीबायोटिक्स का इस्तेमाल बढ़ना वैश्विक चिंता का विषय बन चुका है। यही कारण है कि कुछ समय पहले ही

डब्ल्यूएचओ ने तमाम एंटीबायोटिक्स को तीन ग्रुप में बांटने का अहम कदम उठाया था। ये ग्रुप हैं एक्सेस, वॉच और रिजर्व। पहला ग्रुप है आसानी से उपलब्ध एंटीबायोटिक्स का, जो बाजारों में मरीज को मिल जाए और उसका नुकसान बहुत कम हो। दूसरा ग्रुप है ऐसे एंटीबायोटिक्स का, जो डॉक्टरों की निगरानी में ही लिए जाएं। और तीसरी श्रेणी उन एंटीबायोटिक्स की है जिनको बहुत ही ज्यादा जरूरी होने पर इस्तेमाल किया जाए, यानी सवाल जीने-मरने का हो तो अस्पताल इनका इस्तेमाल करें। मकसद है सही एंटीबायोटिक का सही समय पर सही इन्फेक्शन के लिए इस्तेमाल, और तेजी से बढ़ते एंटीबायोटिक मिसयूज को रोकना।

■ जागरूक हो समाज

भारत सरकार इस बढ़ती समस्या को खत्म करने के प्रयास कर रही है। जैसे वर्ष 2012 में केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने सभी राज्यों के ड्रग कंट्रोलर को किसी भी नई दवा के लिए लाइसेंस जारी न करने की कठोर चेतावनी दी थी, साथ ही यह भी कहा था कि कोई भी कंपनी यदि केंद्रीय दवा नियंत्रक की अनुमति के बिना दवा बनाती है तो उसके खिलाफ कड़ी कार्रवाई की जाएगी। वर्ष 2014 में सरकार ने चंद्रकांत कोकटे की अध्यक्षता में कमिटी बनाई जिसने 6000 एफडीसी दवाओं के फार्मूले की जांच की और इस रिपोर्ट के आधार पर सरकार ने 2016 में 344 एफडीसी पर बैन लगाया। इसके लिए सामाजिक स्तर पर भी जागरूकता की जरूरत है। दवा कंपनियों पर कड़ी निगरानी रखनी होगी और लोगों को समझाना होगा कि वे एंटीबायोटिक के अनावश्यक इस्तेमाल से परहेज करें।

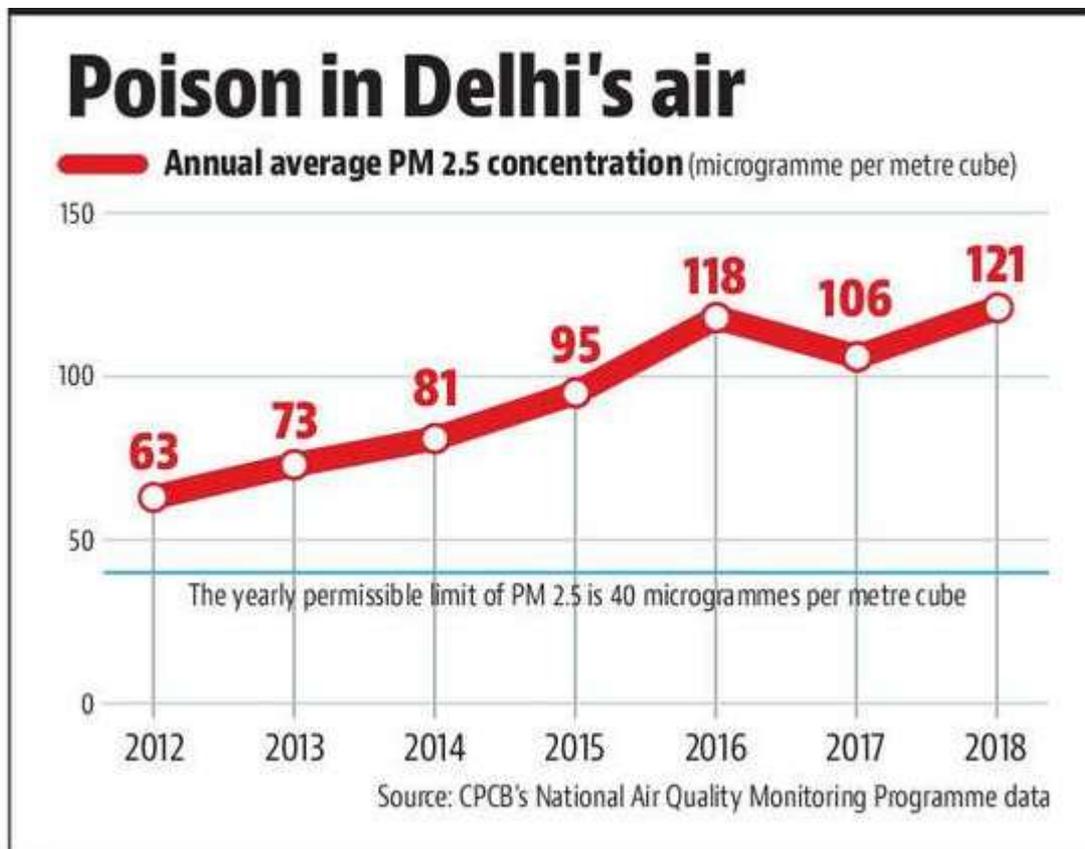
Air Pollution

Sound data key to tracking pollution (Hindustan Times: 20190913)

<https://epaper.hindustantimes.com/Home/ArticleView>

New Delhi : Slowly but surely, air pollution is becoming a politically salient issue, at least in the national capital. Advertisements featuring the Delhi chief minister claiming a 25% reduction in five years have been followed by an inevitable push back from the Opposition on who deserves credit.

Air quality may have finally become an election issue.



In July, the Union environment minister had claimed improved air between 2016 to 2018.

It is important, however, to tread with caution and for governments to understand that they must adopt a systematic and transparent process to track air quality improvements over the years.

The difficulty in credibly tracking air quality arises from problems with the underlying data.

One set of data relies on manual monitoring, and has been the basis of submissions to Parliament. Another set is based on continuous and automated monitoring, which is more reliable, but incomplete. We discuss the use and pitfalls of each of these below.

Comparing CPCB's manual monitors

The first is the Central Pollution Control Board (CPCB) data submitted in the Parliament that come from the manual monitoring stations of the National Air Quality Monitoring Programme (NAMP). The chart above illustrates the annual averages of PM 2.5 (the main pollutant) for Delhi, using data submitted to the Parliament for 2014-2018, supplemented for 2012 and 2013 by information from CPCB's 2013-14 annual report.

Contrary to a reduction, PM2.5 levels have nearly doubled from 2012 to 2018. However, the data used to compute annual NAMP averages is not available publicly, and are therefore hard to verify, and readings are taken infrequently. Therefore, this is unlikely to be a robust basis for tracking Delhi's air quality.

Comparing CPCB's continuous monitors

The parallel continuous monitoring network has more official monitoring stations, greater transparency, and much greater frequency of measurement. However, here the challenge for comparisons across years is to ensure continuous unbroken data from a consistent set of monitors, because air quality levels can vary substantially across a city like Delhi, and over the course of the year. Publicly available data has several data gaps that make like-for-like comparisons very difficult. This is precisely the challenge in Delhi. Even for a recent period like 2016-2018, these data issues inhibit any straightforward claims on air quality improvements.

For earlier years, the number of monitors with reliable data are paltry. In 2011, we would have to rely on one monitor – at ITO.

Between, 2012-2014, we have 1-3 reliable monitors, but often with additional issues such as entire months missing. If we had to compare ITO data in 2011 with 2018, PM2.5 levels see a modest 12% reduction.

But can we confidently make strong claims on air quality improvement on the basis of such scarce information? Unambiguously, no.

Urgent need for assessment protocol to track progress

On the positive side, Delhi's monitoring network had become more robust in 2018, and will serve as a good basis for comparison in the future. With the National Clean Air Programme, the monitoring network in Delhi and 121 other cities will be expanded further, and cities have a 20-30% reduction target to achieve by 2024. However, without a well-defined assessment process established up front, we risk future debate about progress achieved. Such a process needs three components.

One, an assessment method that specifies monitors to consider, reliability criteria, and statistics (annual average, extreme events etc) to use. Two, transparency in official reporting with analysis steps outlined, and all underlying data being publicly accessible. Three, results must be replicable, so that any interested citizen should be able to repeat the analysis with the data and find the same results if the same steps are followed.

Agencies such as CPCB have stated that air quality levels have improved in the last few years. As residents of Delhi, we hope that the air has indeed become cleaner, and urge the government to use reliable regulatory data available to them to assess and report this in a systematic, transparent, and replicable manner. This is not an issue around which we should allow lingering doubts and guesswork.

Harish is a fellow at the Centre for Policy Research (santosh@cprindia.org). Selvaraj is a research analyst at the Council on Energy, Environment and Water (kurinji.selvaraj@ceew.in). Chandra is a research assistant at the Centre for Policy Research (mandakini@cprindia.org)

Odd-even, free masks: Experts meet CM Arvind Kejriwal to discuss pollution (The Indian Express: 20190913)

<https://indianexpress.com/article/cities/delhi/odd-even-free-masks-experts-meet-cm-kejriwal-to-discuss-pollution-5990767/>

The Delhi CM met experts from EPIC (Energy Policy Institute at the University of Chicago), India and WRI (World Resources Institute), as part of consultations to prepare a winter action plan for air pollution.

Delhi govt begins work to improve infra, get more beds at hospitals

Introduce odd-even as an emergency measure and distribute face masks on a mass scale — these were among the suggestions made to Chief Minister Arvind Kejriwal at a meeting with air pollution experts Thursday. The Delhi CM met experts from EPIC (Energy Policy Institute at the University of Chicago), India and WRI (World Resources Institute), as part of consultations to prepare a winter action plan for air pollution.

According to officials, the government is also planning to start a more organised and large-scale system for issuing pollution alerts. “Odd-even is an effective emergency measure and a lot of support for it has come from people. The Graded Response Action Plan has also listed

it as an emergency response for 'severe plus' air quality. We are listening to suggestions that we are getting from people," said a senior government official.

Dr Ken Lee, Executive Director of EPIC India, said: "The January 2016 odd-even pilot reduced particulate air pollution concentration by 14 to 16% . However, due to the possibility of compliance issues in the long-run, it is perhaps best suited as an emergency measure during winter, when vehicle emissions are especially problematic."

Recently, the Delhi government sought feedback from the public to tackle pollution in winters. "Among the suggestions we have got is to distribute happy seeders (harvesting machines) to villagers but there are logistical issues, not limited to funding... Another major point of discussion is pollution after Diwali. Many people have asked that we monitor the situation closely to ensure that pollution levels do not skyrocket after the festival," the official said.

Experts also recommended that while various long-term measures take time to come into effect, the use of pollution masks could be beneficial as an effective risk-mitigation measure.

"Certain types of pollution masks (N90 or N95, for example) can be effective in reducing individual exposure to outdoor air pollution. Our ongoing research, however, suggests that widespread adoption is limited by lack of information about the harmful effects of air pollution, as well as social concerns or norms that discourage usage," Dr Lee said.

Officials also said that several anti-pollution mask manufacturers have been meeting Environment Minister Kailash Gahlot over the past few days.

For Delhi, the end of October and November are crucial as changing weather and wind patterns, and influx of pollutants generated due to crop residue burning, mean a sudden spike in pollution. While Delhi's base pollution because of local issues such as vehicular pollution and construction dust is already high, for at least three weeks, the city is at the mercy of neighbouring states of Haryana, Rajasthan and Uttar Pradesh to control the practice of crop residue burning.

Steep fines, alternatives such as the Happy Seeder machine and awareness drives have been pushed by the Centre and states for the past three years but the practice is far from finished.

Encephalitis

Poor families, girls lead encephalitis death tally, says Bihar survey (The Indian Express: 20190913)

<https://indianexpress.com/article/india/poor-families-girls-lead-encephalitis-death-tally-says-bihar-survey-5990441/>

Compiled by the Bihar government, these figures substantiate what experts have been saying for long: that one underlying, common factor in the mortality of AES is the poor economic and health conditions of the people it strikes.

Encephalitis toll 49, Bengal issues alert

At the AES ward of a community health centre in Muzaffarpur. (Express file photo)

More than 85 per cent of the families whose children succumbed to acute encephalitis syndrome (AES) in Bihar this year work as daily wagers or seasonal labourers. Of the 168 children who died — in Bihar's first major AES outbreak since 2014 — 104 were girls.

Compiled by the Bihar government, these figures substantiate what experts have been saying for long: that one underlying, common factor in the mortality of AES is the poor economic and health conditions of the people it strikes.

The Bihar socio-economic survey, conducted in June this year at the peak of the AES outbreak, besides putting the income of affected families at between Rs 2,500 and Rs 5,500 a month, pointed out that less than 10 per cent of them were beneficiaries of the Mukhya Mantri Kanya Suraksha Yojna (entailing Rs 2,000 per month for up to two girl children per family).

Kavita Devi, of Ali Neora village in Muzaffarpur district, says they rushed their four-year-old daughter Sandhya to Shri Krishna Memorial Charitable Hospital (SKMCH) in Muzaffarpur when her condition worsened on June 13, after mild fever for two evenings. "She passed away within hours."

Her eyes welling over, an incomprehending Kavita says, "Sandhya did not play outside the day before she passed away. But, we are daily wagers, this is the lean season and we have to go out looking for work. Where do we keep our children? So, they play in the sun. It's quite likely Sandhya did so too." A Central team has identified heat stroke as a contributing factor in AES deaths.

While Kavita did not take Sandhya to a primary health centre (PHC) as SKMCH was nearer, the Bihar survey found that most patients who approached PHCs were told to go to bigger hospitals.

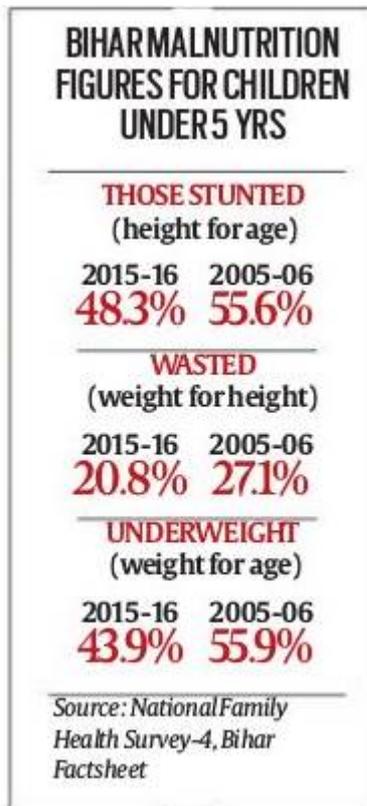
Mohammed Shajan of Sahpur says that medical workers at the PHC where he and his wife Chandni Khatoon took their three-year-old daughter Gulfsha were clueless. “They advised us to go to SKMCH. The doctors there told me we had wasted precious hours. We are poor people. How do we know of such complications?” Shajan says.

Dr Shakeel of the Jan Swasthya Abhiyan believes that, “left to auxilliary nurses and midwives”, Bihar PHCs are not equipped to handle AES. Dr Ravikant Singh, whose Mumbai-based outfit Doctors For You aided the Bihar government’s relief operations, says the state’s medical system failed to prepare for the seasonal outbreak.

In 2016, the Bihar government had drafted a well-appreciated standard operating procedure (SoP) to deal with AES, and revised the same in 2018. As per the SoP, ASHA workers and auxiliary nurse midwives (ANMs) were to visit vulnerable areas from the last week of April to end of June to spread awareness about the disease.

According to Dr Ravikant Singh, the drive has been losing steam, and especially suffered this time on account of the general elections.

Mintu Devi, an ANM from Minapur block of Muzaffarnagar district, says that while it was wrong to say there was no push behind awareness drives, they “did not receive much guidance from higher-ups”.



Simply Put: How world is losing fertile land

“In earlier years, we got written orders from the Health Department in mid-April. This time the orders came only in June, after the disease had struck,” adds an ASHA worker from Vaishali district who did not want to be identified.

Denying there had been laxity, Bihar Principal Secretary, Health, Sanjay Kumar, says, “What role does the Health Department have in elections?” Claiming they had conducted sensitisation drives for “more than 270 PHC doctors a month” before the outbreak, Kumar adds, “We will probe if there have been any shortcomings.”

He also denies that the PHCs turned away patients, saying that while families of 374 had consulted them, only 170 were referred to other medical centres.

Both Kavita and Chandni Khatoon deny having been approached by any health worker and say they had no idea about “chamki (as the locals call AES)” before their children fell ill. “Nobody told us about the precautions to take,” Kavita says. “They (the ANM workers) came a few days after Sandhya died and offered ORS pouches for my nine-month-old second daughter. What do we do with them?”

Apart from awareness drives, Dr Singh faults the state government for not doing enough to lift “nearly half of its children who are malnourished” out of that state. “We also know that the girl child is more prone to malnutrition than the male child,” he says. “Could this be the reason girls are more affected by AES than boys?” asks Dr Shakeel, noting that 62 per cent of those who died of AES were girls.

Rupesh Kumar, an activist with the Right to Food campaign, says that in its initial years the Nitish Kumar government had improved the mid-day meal programme, but now it wasn’t functioning well except in Purnea and Gaya districts. He also points to changing dietary patterns as responsible for malnutrition. “Earlier, during lean times, people fished at ponds. But where are the ponds now? Besides people now consider it below their dignity to eat some things they used to — insects, rats. The trouble is that even in the non-lean season they do not have adequate amounts of the so-called respectable food.”

Principal Secretary Kumar promises this will change soon. “We have asked for an even more rigorous socio-economic survey to help us iron out deficiencies.”

H1N1 cases

Telling Numbers: 27,000 H1N1 cases in 2019 so far, peak years were 2015 and 2017 (The Indian Express: 20190913)

<https://indianexpress.com/article/explained/telling-numbers-27000-h1n1-cases-in-2019-so-far-peak-years-were-2015-and-2017-5990547/>

A report by the National Centre for Disease Control, listing H1N1 cases since 2012, shows that two full calendar years (2015 and 2017) have had more cases than 2019 so far.

Until September 1, the year 2019 has had over 27,505 reported cases of H1N1 (swine flu) in India, with 1,137 deaths.

A report by the National Centre for Disease Control, listing H1N1 cases since 2012, shows that two full calendar years (2015 and 2017) have had more cases than 2019 so far.

In 2019, the highest number of cases has been recorded in Rajasthan (5,052 cases and 206 deaths until September 1), followed by Gujarat (4,832 and 149), Delhi (3,583 and 31), Maharashtra (2,173 and 208 until August 31), Uttar Pradesh (1,057 and 25 until July 14) and Karnataka (1,882 and 88 until August 30).

In 2018, which saw 15,266 cases and 1,128 deaths, the states with the most cases were Tamil Nadu (2,812), Maharashtra (2,593), Rajasthan (2,375), Gujarat (2,164) and Karnataka (1,733).

H1N1 IN INDIA, SINCE 2012

| | | |
|-------|---|--------------------------------|
| 2012 | ■ | 5,044 cases (405 deaths) |
| 2013 | ■ | 5,253 cases (699 deaths) |
| 2014 | | 937 cases (218 deaths) |
| 2015 | ■ | 42,592 cases (2,991 deaths) |
| 2016 | | 1,786 cases (263 deaths) |
| 2017 | ■ | 38,811 cases (2,270 deaths) |
| 2018 | ■ | 15,266 cases (1,128 deaths) |
| 2019* | ■ | 27,505 cases (1,137 deaths) |

*Until September 1

LARGE OUTBREAKS, BY CASES

| | |
|-------------------|-------|
| Maharashtra, 2015 | 8,583 |
| Gujarat, 2017 | 7,709 |
| Gujarat, 2015 | 7,180 |
| Rajasthan, 2015 | 6,858 |
| Maharashtra, 2017 | 6,144 |

Source: National Centre for Disease Control

Across all years, the largest outbreaks in terms of cases have happened in Maharashtra, Gujarat and Rajasthan. H1N1 cases in these three states have contributed significantly to 2015 and 2017 being peak years, followed by 2019 so far.

<http://onlinepaper.asianage.com/article/detailpage.aspx?id=13749520>

CAPTURING THE UNSUNG

In order to celebrate the heroes of child health, a photo exhibit was organised in order to highlight the contributions of these heroes.

AGE CORRESPONDENT

 We always consider health to be wealth but tend to neglect the root of good health- a good childhood. It is very important to take care of a child's nourishment from the initial days of their lives. But in the last few years, there are many Indians who have contributed towards improving child health in India. Thanks to them, today a child born is likely to survive to the age of five, three times more than back in the 1990s. To showcase this, a unique photo exhibit was conducted in All India Fine Arts and Crafts Society (AIFACS) in the capital city. The highlight of the show was the contribution of some of these unsung heroes.

One of these people featured in the exhibit was Geeta



Verma from Himachal Pradesh who is an ancillary nurse and midwife. She has been travelling on her motorcycle to deliver vaccinations to children in hard-to-reach areas. Being a parent herself she has earned a great deal of recognition as her photographs went viral online. Geeta says, "Motivating people is most important. I still call people in my sub-center on the 20th of every single month to convince them to bring their children for vaccinations. If you have will power, you can do any-

thing." The exhibit, on display, shows Geeta's elements, travelling by foot or by motorcycle to reach remote communities.

Jointly hosted by Postgraduate Institute of Medical Education and Research (PGIMER), Chandigarh, International Vaccine Access Center, Johns Hopkins School of Public Health, Global Health Strategies (GHS), Child Health Foundation (CHF), the exhibit gives a sneak peek into the lives of various people like Geeta, who have proven to be heroic for the society.

The government has also helped in reducing child mortality rate by advancing in science

and technology through research and development and strengthening health systems. Proper immunisation of children has been another key tool in protecting them from preventable-diseases.

Other people featured in the exhibit include Dr Gangandee Kang, Director, Translational Health Science and Technology Institute (THSTI), who was instrumental in developing vaccines against many diseases. Dr. Santosh Shukla, State Immunization Officer, Madhya Pradesh, who developed innovative solutions for vaccine program implementation was also profiled. Dr. Cyrus Poonawalla, Chairman, Serum Institute of India, and Dr. Krishna Ella, Chairman, Bharat Biotech, who manufacture these life-saving tools for India and the world; Abdul Shah, whose daughter was the last wild poliovirus case detected in India, and champions such as Jaleel Khan, Gram Pradhan, and Wasim Khan (who worked to actively encourage vaccine uptake in their community) were the rest of the unsung heroes whose lives were highlighted.



 Motivating people is most important. I still call people in my sub-center on the 20th of every single month to convince them to bring their children for vaccinations.

— Geeta Verma

Prostate Cancer

Eating mushrooms might reduce prostate cancer risk (Medical News Today: 20190913)

<https://www.medicalnewstoday.com/articles/326285.php>

In the first study of its kind, Japanese researchers have found an association between eating mushrooms and a reduced risk of prostate cancer. Although the size of the effect is relatively small, the findings are likely to inspire further investigation.

New research suggests that regularly eating mushrooms may reduce a person's risk of prostate cancer.

The National Cancer Institute predict that there will be 174,650 new cases of prostate cancer in the United States in 2019.

Although treatment for this type of cancer is continually improving, there is neither a cure nor any way to prevent it.

However, evidence suggests that eating healthfully might reduce the risk.

If scientists can identify simple dietary interventions that can reduce this risk, even by a small amount, it could make a substantial difference globally.

Researchers have recently carried out a study on mushrooms, publishing their findings in the International Journal of Cancer.

Why mushrooms?

Mushrooms are a relatively inexpensive and widely consumed food throughout the world. In recent years, studies have begun to identify their potential disease fighting capabilities.

A 2012 review claims that certain compounds in mushrooms have anticancer, anti-inflammatory, and anti-diabetic properties, among others.

More specifically, studies in both cultured cells and animal models have found that extracts from some mushroom species can slow tumor growth.

According to the authors of the recent paper, only one previous human trial has investigated mushrooms and prostate cancer. The earlier study tested powdered white button mushrooms in men with recurrent prostate cancer.

The team found that for some of the participants, the mushroom extract reduced levels of prostate specific antigen (PSA) — the primary biomarker for prostate cancer — and boosted the body's immune response to cancer.

The most recent study is the first to look at the relationship between mushroom consumption and the incidence of prostate cancer within a population.

Data collection

To investigate, the researchers took data from the Miyagi Cohort Study and the Ohsaki Cohort Study. In total, they had access to data from 36,499 Japanese men between the ages of 40 and 79 years. They followed these individuals for a median of 13.2 years.

The scientists used questionnaires to capture information about diet, medical history, levels of physical activity, smoking status, drinking habits, levels of education, and more.

They then assigned each participant to one of five groups based on their mushroom consumption:

almost never: 6.9% of participants

one or two times each month: 36.8%

one or two times each week: 36.0%

three or four times each week: 15.7%

almost every day: 4.6%

During the follow-up period, there were 1,204 cases of prostate cancer, which equated to 3.3% of participants.

The mushroom effect

After controlling for confounding variables, the researchers observed a significant beneficial effect:

Compared with those who ate mushrooms less than once a week, those who ate mushrooms one or two times each week had an 8% lower relative risk of prostate cancer. Those who ate mushrooms three or more times each week had a 17% lower relative risk.

The authors conclude: "To the best of our knowledge, this is the first cohort study indicating the prostate cancer-preventive potential of mushrooms at a population level."

This relationship was significant even after controlling for a range of factors, including family history of cancer, alcohol and tobacco use, and coffee intake.

How common is erectile dysfunction?

Importantly, they also adjusted their analysis for the amount of energy, meat, fruit, vegetables, and dairy that each participant consumed — in other words, the reduction in risk was not, for instance, because the participants who ate more mushrooms also ate more vegetables.

However, it is worth noting that the increase in the incidence of prostate cancer between those eating the fewest mushrooms and those eating the most is just 0.31% (3.42% compared with 3.11%, respectively).

Also, the effect was only significant in men older than 50 years. The authors believe that this might be because prostate cancer is much rarer in younger men.

Limitations and questions

There are certain limitations to the study. Firstly, using self-reported dietary information is not ideal because it is open to error and misreporting. However, with a study of this size, there is no viable alternative.

Along similar lines, the team only recorded dietary information once, at the beginning of the study. Over a decade, a person's diet can change dramatically.

Also, as lead author Shu Zhang, Ph.D., notes, "Since information on mushroom species was not collected, it is difficult to know which specific mushroom(s) contributed to our findings."

Of course, because the study was observational, the authors cannot definitively conclude that mushrooms caused the reduction in cancer risk. Despite controlling for many variables, it is still possible that an unmeasured factor influenced the results.

Although they did not design the research to uncover how mushrooms might protect against cancer, the authors believe that this effect might be due to their antioxidants. For instance, some mushrooms contain L-ergothioneine and glutathione, both of which are powerful antioxidants.

Overall, the authors conclude that "habitual mushroom intake might help to reduce prostate cancer risk. Further studies in other populations and settings are required to confirm this relationship."

Diabetes

Taller people less likely to develop type 2 diabetes (Medical News Today: 20190913)

<https://www.medicalnewstoday.com/articles/326318.php>

New research from Germany has found that taller people have a lower risk of type 2 diabetes.

Height may influence people's diabetes risk, new research suggests.

For every 10 centimeters (cms) of additional height, there was a 41% reduced risk of type 2 diabetes in males and 33% in females, according to the recent *Diabetologia* study.

The researchers had adjusted the results to remove the potential effects of age, education, lifestyle, and waist size on diabetes risk.

They suggest that the inverse relationship between height and type 2 diabetes risk could be due to less fat buildup in the liver and more favorable cardiometabolic risk factors, "specifically blood fats, adiponectin, and C-reactive protein."

Among those with a body mass index (BMI) in the overweight or obese range, the risk of type 2 diabetes reduced by 36% in males and 30% in females for every additional 10 cm of height.

"This may indicate," write the authors, "that a higher diabetes risk with larger waist circumference counteracts beneficial effects related to height, irrespective of whether larger waist circumference is due to growth or due to an energy imbalance."

Short stature and type 2 diabetes link

The study is the work of scientists from the German Center for Diabetes Research and the German Institute of Human Nutrition Potsdam-Rehbruecke, both in Germany.

The researchers drew on records relating to 27,548 participants who enrolled in the European Prospective Investigation into Cancer and Nutrition (EPIC) study at Potsdam in Germany during 1994–1998.

Of these participants, 16,644 were female and aged 35–65 years and 10,904 were males from 40–65 years of age. For their analysis, the researchers randomly selected a representative sample of around 10% of the cohort.

The new findings follow those of previous research that also linked short stature with a higher risk of type 2 diabetes.

Reports that taller people may have greater insulin sensitivity and better functioning beta cells have accompanied these earlier findings.

Those studies also found links between shorter stature and raised risk of cardiovascular conditions. Such relationships could involve risk factors with ties to type 2 diabetes — including elevated blood pressure, inflammation, and blood fats.

Such findings would suggest that height might serve to predict the risk of type 2 diabetes.

Leg length and sitting height

The new study, however, sought not only to examine the relationship between height and type 2 diabetes but also to look more closely at two components of height: leg length and sitting height.

The team found that for males, there was a strong connection between longer leg length and lower risk of type 2 diabetes. In females, however, both sitting height and leg length contributed to this effect.

Can diabetes influence cancer's spread?

A study explores how diabetes may create biological conditions that make it easier for cancer cells to travel from the primary tumor.

These findings would suggest, note the authors, that growth before puberty has a more significant effect on lower diabetes risk than growth after puberty in males. They explain that they base this on the assumption that leg bones stop growing before trunk bones.

For females, however, it appears that both growth before and after puberty contribute to lower diabetes risk.

Liver fat and cardiometabolic profile

Among their analyses, the researchers calculated the extent to which liver fat and other cardiometabolic risk factors might explain the relationship between height and type 2 diabetes.

They found that when they took out the potential effect of liver fat content, the reduction in type 2 diabetes risk per 10 cm of extra height in males was 34% (compared with 41% in total) and 13% in females (compared with 33% in total).

Certain cardiometabolic risk factors also had an effect. In males and females, both blood fats and glycated hemoglobin (a blood sugar measure) appeared to influence the relationship between height and type 2 diabetes.

In females, however, there were additional impacts from adiponectin and C-reactive protein. Adiponectin is a hormone that affects control of blood sugar, and C-reactive protein is a marker of inflammation.

Bringing these results together, the researchers suggest that much of the favorable effect that greater height has on reduced risk of type 2 diabetes likely comes from taller people having lower liver fat content and more favorable cardiometabolic risk profiles.

They comment that their findings point to a need to include cardiometabolic profile, alongside height, as a useful predictor for diabetes risk.

They advise that doctors should perhaps monitor cardiometabolic risk more often in people of shorter stature, even if their body size and composition might indicate otherwise.

The authors conclude: "Our study also suggests that early interventions to reduce height related metabolic risk throughout life likely need to focus on determinants of growth in sensitive periods during pregnancy, early childhood, puberty, and early adulthood, and should take potential sex differences into account."

Ageing

Has a small trial stumbled upon a way to reverse biological aging? (Medical News Today: 20190913)

<https://www.medicalnewstoday.com/articles/326329.php>

In a small clinical trial, scientists were looking for a means to restore the thymus — the gland that forms and releases key immune cells. By doing so, they actually managed to reverse various aspects of biological aging.

A three-pronged intervention demonstrates it may be possible to reverse biological aging.

The thymus gland, located between the lungs, is the organ within which T cells — a critical population of immune cells — mature.

This gland also has a peculiarity. After a person reaches puberty, it begins a process of involution, which means that it becomes less and less active and starts to shrink in size gradually.

Studies have shown that thymic involution affects the size of immune cell populations related to it, possibly causing changes to biological mechanisms when people reach their 60s.

Prof. Steve Horvath from the University of California, Los Angeles School of Public Health and colleagues initially set out to see if they could restore function in the aging thymus.

In the study paper they recently published in the journal *Aging Cell*, they explain that "[t]hymic involution leads to the depletion of critical immune cell populations, [...] and is linked to age-related increases in cancer incidence, infectious disease, autoimmune conditions, generalized inflammation, atherosclerosis, and all-cause mortality."

For the reasons outlined above, the researchers organized and conducted what they believe is a first-of-its-kind clinical trial: TRIIM (Thymus Regeneration, Immunorestitution, and Insulin Mitigation).

The study took place between 2015–2017, and the researchers were pleased with the results they achieved. They found that it was possible to restore thymic function and reduce the risk of age-related conditions and diseases linked to poor immune system reaction.

They also had a pleasant surprise. At the end of the trial, the researchers found that the mix of drugs they used to restore the thymus gland had also reversed other aspects of biological aging.

'Significantly reduced' biological age

A person's biological age refers not to how old they are in conventional years, but to how much their biological mechanisms have aged, according to their epigenetic clocks — markers that indicate how changes in various cellular mechanisms have affected gene expression.

For their trial, Prof. Horvath and team recruited 10 healthy adult males aged 51–65. The researchers were able to use and analyze data collected from nine of these individuals.

In the first week of the clinical trial, the researchers gave the participants recombinant human growth hormone (rhGH). In its natural state, rhGH supports many different aspects of cellular health, such as cell growth and regeneration.

Previous studies — some conducted in animals, and others with the participation of individuals with HIV — have uncovered evidence that rhGH could help restore thymus function, as well as immune system effectiveness.

Can scientists find the formula for 'better aging?'

New research looks for a strategy that will keep people healthier for longer.

To the regimen of rhGH, the researchers then gradually added the steroid hormone dehydroepiandrosterone (DHEA) and then metformin, a drug that helps increase insulin sensitivity.

Prof. Horvath and team conducted MRI imaging, different blood tests, and epigenetic age tests at various stages of the trial to find out whether their approach had been successful.

The researchers found that they were correct in thinking that the rhGH, DHEA, and metformin combination could restore the thymus gland later in life. They also discovered that the intervention had "turned back" the biological age clocks of the participants. The investigators write:

"Although, on average, trial volunteer epigenetic ages were lower than their chronological ages at baseline, epigenetic age was nevertheless significantly decreased by treatment [...], with a mean change in [the difference between the epigenetic age and chronological age] after 12 months of about 2.5 years."

Though these results are promising and indicate that it may be possible to reverse signs of biological aging, the researchers also caution that the trial sample was very small.

They advise that future studies should aim to replicate these findings in larger cohorts to verify their validity.

The research team also note that their trial received financial support from Intervene Immune, Inc., a company with a specific interest in reversing thymic involution and reversing the aging of the immune system.